International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(4): 19-22

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(4): 19-22
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 05-05-2017
Accepted: 06-06-2017

प्रेम सिंह
शोधार्थी (पी.एच.डी.), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Correspondence
प्रेम सिंह
शोधार्थी (पी.एच.डी.), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

परिवार का स्वरूप (ऋग्वेदीय ब्राह्मण–ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में)

प्रेम सिंह

प्रस्तावना

वेद हिन्दू संस्कृति की आत्मा हैं। ये मानव जाति के लिए प्रकाश–स्तम्भ हैं। वेद विश्व को एक–नीड़ बनाने के पक्षधर हैं[1]। वेद ज्ञान के अथाह भण्ड़ार हैं। इनमें ज्ञान और विज्ञान की सभी विद्याओं का सूत्र रूप में उल्लेख है। अतएव आचार्य मनु का कथन अक्षरस सत्य है कि वेद सर्वज्ञानमय हैं[2]। वेदों की चार संहिताएं हैं– ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता और अथर्ववेद संहिता। यज्ञिय कर्मकाण्डों की प्रक्रिया केवल वेद मन्त्रों से ही पूर्ण सम्पन्न नहीं होती है; अपितु यज्ञिय कर्मकाण्ड की प्रक्रिया को पूर्ण सम्पन्न करने के लिए प्रातः वन्दनीय तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने 'ब्राह्मण–ग्रन्थों' की रचना की। प्रत्येक संहिता के अपने–अपने ब्राह्मण–ग्रन्थ हैं। ऋग्वेदीय ब्राह्मण–ग्रन्थों में ऐतरेय ब्राह्मण और शांखायन (कौषीतकि) ब्राह्मण आते हैं[3]। ब्राह्मण–ग्रन्थों की परम्परा में ऋग्वेदीय ब्राह्मण–ग्रन्थों का सम्बन्ध, परिवार, समाज और सभ्यता की दृष्टि से विशिष्ट स्थान है।

ब्राह्मण शब्द की निष्पत्ति ब्रह्मन् शब्द से तद्धित्तार्थक अण् (अ) प्रत्यय के संयोग से हुई है[4]। ग्रन्थवाचक ब्राह्मण शब्द का प्रयोग महाभारत[5] के अतिरिक्त प्रत्येक स्थान पर नपुंसक लिंग में हुआ है[6]। ब्राह्मण शब्द का व्युत्पित्तिपरक अर्थ होता है– ब्राह्म इदं ब्राह्मणम्। आध्यात्मविद्या के पावन रहस्यभूत ग्रन्थ को ब्राह्मण कहते हैं। ब्रह्मन्[7] शब्द वेद ज्ञान के अर्थ का वाचक है। अतः वेद ज्ञान सम्बन्धी विवेचन ब्राह्मणम् पद का सामान्य अर्थ माना जाता है[8]। आचार्य सायण का कथन है कि जो परम्परा से मन्त्र नहीं है वह ब्राह्मण है और जो ब्राह्मण नहीं, वह मन्त्र है[9]। आपस्तम्भ परिभाषा सूत्र के व्याख्याकार आचार्य कपर्दी का कथन है कि मन्त्रो मननात्–ब्राह्मणमभिधनात्[10] अर्थात् मनन करने से मन्त्र होता है और अभिधन करने से ब्राह्मण। आचार्य भट्टभाष्कर का कथन है कि कर्मकाण्ड एवं मन्त्रों के व्याख्यान ग्रन्थों को ब्राह्मण कहते हैं[11]। आचार्य वाचस्पति मिश्र ने ब्राह्मण ग्रन्थों के वर्ण्य–विषयों का निर्देश करते हुए कहा है कि ब्राह्मण उन ग्रन्थों को कहते हैं जिनमें निर्वचन, मन्त्रों का विविध यज्ञों में विनियोग, प्रयोजन, प्रतिष्ठान(अर्थवाद) और विधि का वर्णन होता है[12]। समाज की दृष्टि से ऋग्वेदीय ब्राह्मणों का विशिष्ट स्थान है।

ऋग्वेदीय ब्राह्मणों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि परिवार स्वाभाविक और महत्वपूर्ण सामाजिक संगठनों में सबसे प्राचीनतम एवं पूरे विश्व में पाया जाने वाला संगठन था। यह एक सार्वभौमिक'नैसर्गिक' संगठन अथवा इकाई[13] था। जिस प्रकार वृक्षों की समष्टि 'वन' और व्यष्टि वृक्ष मात्र कहलाती है[14] उसी प्रकार परिवार की समष्टि समाज और व्यष्टि परिवार मात्र कहलाती है। परिवार का प्रारम्भ स्त्री पुरूष के पति–पत्नी रूप में एक साथ रहने से होता था, जिसमें माता–पिता, भाई–बहन, पुत्र–पुत्री आदि सदस्य रहते थे। इन सब सदस्यों का परस्पर अगाध स्नेह परिवार की आबद्धत्ता का सेतु बनता था। समाज की नींव परिवार पर ही आश्रित है इसलिए परिवार का महत्व प्राचीनकाल से ही स्वीकार किया गया है। परिवार ही एकमात्र वह सामाजिक संस्था है जिसके माध्यम से आज तक मानव जाति शाश्वत, सुरक्षित एवं पोषित रही है। तत्कालीन समाज में केवल संयुक्त–परिवार[15] प्रणाली ही विद्यमान थी। जिसमें परिवार जनों के जीवन में जीवन मूल्य, नैतिकता एवं सद्गुणों का क्रमिक विकास करना ही मूल धर्म था। बालक परिवार में रहकर ही अपने बड़ों से प्रथम पाठशाला के रूप में सद्गुण, सद्व्यवहार एवं सहिष्णुता सीखता था, जो सामाजिक व्यवहार में जीवन मूल्यों की स्थापना करती थी।

परिवार शब्द 'परि' उपसर्ग पूर्वक 'वृ'(घेरना) धातु से घञ्(अ) प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। वी.एस. आप्टे ने परिवार की निरुक्ति 'परिव्रियते अनेन इति परिवारः' की है[16]। अतः शाब्दिक अर्थ में परिवार से अभिप्राय 'घेरने वाले' से है[17]। परिवार का विकास समाज को विकसित, संवर्द्धित तथा उसके सांस्कृतिक जीवन को पल्लवित एवं पुष्पित करता था। परिवार के माध्यम से समाज एवं राष्ट्र प्रगति करता था। ऐतरेयब्राह्मण में विवाह संस्कार के समय पुरोहित वर–वधू को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं

कि 'तुम घर में रहो, वियुक्त मत होओ, अपने घर में पुत्रों और पौत्रों के साथ खेलते हुए और आनन्द मनाते हुए सौ वर्षों की आयु का भोग करो[18]। वधू को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि तुम सास–ससुर, नन्द और देवर पर शासन करने वाली राजी बनकर रहो[19]। इन कथनों से यह सिद्ध हो जाता है कि ऋग्वैदिक ब्राह्मण–ग्रन्थों के काल में संयुक्त–परिवार की प्रथा विद्यमान थी। संयुक्त परिवार में वयोवृद्ध जनों का सम्मानपूर्ण स्थान था तथा परिवार उनके सम्यक् ज्ञान का पूर्ण लाभ प्राप्त करता था। परिवार के सभी सदस्य वयोवृद्ध जनों के प्रत्येक निर्देश का पूर्ण पालन करते थे। भारतीय संस्कृति पर लक्ष्य रूप वर्तमान समाज में तथाकथित बालगृहों एवं वृद्धाश्रमों की तत्कालीन समाज में कोई आवश्यकता नहीं थी और न ही इस प्रकार की कोई संस्था तत्कालीन समाज में विद्यमान थी। तत्कालीन समाज में संयुक्त–परिवार की परम्परा का अनुमान 'गोत्र' एवं 'प्रवर' शब्दों से भी लगाया जा सकता है। धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर गोत्र एवं प्रवर का उल्लेख किया जाता था[20]। गोत्र शब्द साधरणतः पूर्व पुरुषों को व्यक्त करता है[21]। पाणिनी ने भी गोत्र शब्द की व्याख्या वंश या कुल के अर्थ में की है[22]। ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में गोत्र शब्द का प्रयोग कुल या वंश के अर्थ में ही हुआ है। वस्तुतः गोत्र शब्द उस आदि पुरुष के लिए प्रयुक्त किया गया है, जिससे कुल या वंश की परम्परा प्रारम्भ हुई, जो विद्या, धन,नैतिकता आदि गुणों के लिए विख्यात हुआ। यज्ञ के अवसर पर क्षत्रिय अपने पुरोहित के गोत्र का उच्चारण करता था[23]। ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर और्वाण, ऋभव, काश्यप आदि गोत्र सम्बन्धी शब्दों का उल्लेख हुआ है[24](क)। स्पष्ट है कि उस युग में एक व्यक्ति के नाम पर 'गोत्र' परम्परा का प्रारम्भ हो चुका था। याज्ञिक अनुष्ठानों के अवसर पर यजमान के 'प्रवर' का उल्लेख किया जाता था[24](ख)। इस काल में प्रवर को ऋषि के रूप में माना जा सकता है, जो यज्ञिक कार्य से आबद्ध था। सामान्यतः प्रवर का अर्थ वरण करने या आवाहन करने योग्य, प्रार्थनीय से रहा है जो श्रेष्ठ पूर्वजों या ऋषियों की ओर संकेत करता है। कालान्तर में यह शब्द पूर्वज ऋषि नामों से आबद्ध हो गया[25]। पुरोहित याज्ञिक कार्य करते समय अपने सर्वश्रेष्ठ ऋषि का नाम स्मरण करते थे[26], जो उनके समुदाय के प्रतीक होते थे। ये ऋषि व्यक्ति के पूर्वजों के रूप में उनके आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं से धीरे–धीरे आबद्ध होते गए। अतः प्रवर का सम्बन्ध व्यक्ति की पारम्परिक, धार्मिक और सामाजिक प्रक्रियों से था। इस प्रकार 'गोत्र' एवं 'प्रवर' शब्दों के विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि ऋग्वेदीय ब्राह्मणों के युग में विशाल संयुक्त परिवारों की परम्परा थी, जो रक्त सम्बन्ध आधारित एक गोत्र के पुरुषों से युक्त होते थे।

ऋग्वैदिक काल में संयुक्त परिवार के विघटन की प्रक्रिया के अल्पांश प्राप्त हाते हैं। पुत्र अपने पिता के जीवित रहते हुए ही सम्पत्ति के बँटवारे का प्रयाश करने लगे थे। मनु के पुत्रों ने उसके सामने ही सम्पत्ति का विभाजन कर लिया था तथा नाभानेरिष्ट को जो गुरुकुल में पढ़ता था को कोई भाग नहीं दिया[27]। ऐतश मुनि और उसके पुत्र अभ्यग्नि के उदाहरणों से भी यही सिद्ध होता है[28]। भ्रातव्य शब्द ऋग्वैदिक काल में चचेरा भाई या भतीजे के लिए प्रयुक्त होता था, किन्तु ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में भ्रातव्य का अर्थ शत्रु भी हुआ है[29], ऐसे उदाहरण अल्पमात्र हैं।

परिवार के उद्देश्यः–

(क). दाम्पत्य जीवन का आरम्भ विवाह से होता था। इसके अन्तर्गत केवल रति क्रीड़ा ही नहीं आती है, अपितु धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि क्रियाएँ भी आती हैं। जिनके माध्यम से मानव का विकास होता है क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है[30] और सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य समाज से अलग नहीं किया जा सकता है। समाज में रहकर ही उसका सर्वांगीण विकास सम्भव है। समाज से पृथक् हो जाने पर मनुष्य 'पशु' की श्रेणी में आ जाता है। समाज से पृथक् मनुष्य की कल्पना करना भी निरर्थक है। ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में कहा गया है कि विवाह का उद्देश्य सर्वप्रथम है धार्मिक कृत्यों का सम्पादन, जिन्हें व्यक्ति पति–पत्नी के रूप में रहने पर ही कर सकता है। नित्य क्रियमाण अग्निहोत्र नामक यज्ञ को पति–पत्नी दोनों साथ रहकर मिलकर करते थे। पत्नी के अभाव में पति को ही यज्ञ करना होता था[31], परन्तु यह विवशता में ही किया जा सकता था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि पत्नी रहित व्यक्ति यज्ञ का अधिकारी नहीं होता है[32]। अतः कहा जा सकता है कि धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन में दाम्पत्य जीवन का पर्याप्त महत्व था।

(ख). विवाह का दूसरा उद्देश्य है–पुत्र की प्राप्ति। ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में पुत्र की प्राप्ति के लिए तीव्र अभिलाषा व्यक्त की गई है। समाज में वंश परम्परा पुत्र के द्वारा ही चलती है। तत्कालीन समाज में तीन प्रकार के ऋणों की कल्पना हो चुकी थी[33]। पितृ ऋण से उऋण होने के लिए पुत्र की प्राप्ति आवश्यक मानी जाती थी। पुत्र उत्पत्ति के पश्चात पिता अमर हो जाता है। पिता के लिए पुत्र आलोक है तथा संसार सागर से पार उतारने वाली नौका है[34]। पुत्र के इस महत्व के कारण ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में सामाजिक विकास को दृष्टि में रखकर पुत्रोत्पत्ति पर विचार किया गया है तथा सन्तान की अनिवार्यता पर बल दिया गया है।

(ग). विवाह का तीसरा उद्देश्य है–रति सुख। ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में मैथुन को आनन्दायक माना गया है। यज्ञ के अनेक प्रसंगों में रति की चर्चा का उल्लेख है[35]। भगवद्गीता में श्री कृष्ण अपने स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैं प्राणियों में धर्मानुसार काम हूँ[36] । इस प्रकार धार्मिक, सामाजिक और आत्मिक सुखानुभूति के कारण दाम्पत्य जीवन का विकास हुआ और दाम्पत्य जीवन, परिवार के विकास का मूल कारण बना। तत्कालीन समाज में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन था[37]। एक पुरुष के अनेक पत्नियाँ हो सकती थी। राजा हरिश्चन्द्र के सौ पत्नियों का उल्लेख है। आचार्य सायण ने ऐतरेय ब्राह्मण में राजा के तीन पत्नियों के होने का उल्लेख किया है, जिनमें उत्तम जाति की 'महिषी', मध्यम जाति की 'वावाता', और अधम जाति की परिवृक्ति नामक तीन पत्नियाँ होती थीं[38]। तैत्तिरीय ब्राह्मण में बहुपत्नीत्व को सौभाग्यदायक माना गया है[39]।

इस आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में बहुपत्नीत्व की प्रथा का प्रचलन था। किन्तु वैदिक साहित्य में उपलब्ध प्रमाणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि बहुपत्नीत्व की परम्परा सामाजिक दृष्टि से बहुत ही घातक थी। निश्चय ही इन सपत्नियों के कारण पारिवारिक जीवन अशान्त और क्षुब्ध रहता था। शत्रु के अर्थ में प्रयुक्त सपत्न शब्द सपत्नियों की प्रतिद्वन्द्विता की ओर संकेत करता है[40]। इस प्रतिद्वन्द्विता और संघर्ष ने दाम्पत्य जीवन को तो दुषित और अशान्त किया ही, साथ ही साथ स्त्रियों के पतन का भी कारण बना। इस प्रकार संहिता काल में पत्नी (सम्राज्ञी) ऋग्वेदीय ब्राह्मणों के काल में भार्या (भरण करने योग्य) कही जाने लगी[41]।

संयुक्त परिवार के अनेक सदस्यों के सहयोग और सर्मथन से परिवार का विकास हुआ है[42]। तत्कालीन समाज पुरुष प्रधान समाज था। पुत्र के नाम के साथ पिता का नाम लिया जाता था। तुरः कावषेयः, जनमेजयः परिक्षितः, च्यवनो भार्गवः इत्यादि[43] अनेक उदाहरणों में पुत्र के साथ पिता का नाम लिया गया है। पुत्र के साथ माता के नाम का उल्लेख तभी हुआ है जब उसके पिता का नाम पूर्ण अज्ञात हो। ऐतरेय ब्राह्मण के कर्ता महीदास स्वयं अपनी माता 'इतरा' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त सत्यकाम जाबाल और काद्रवेय आदि का उल्लेख भी उनकी माता के नाम के साथ हुआ है[44]। इससे ज्ञात होता है कि उस काल में बिना विवाह के उत्पन्न संतान के पिता का नाम विदित न होने पर वह सन्तान माता के नाम से प्रसिद्ध हो सकती थी।

ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में गृहपति, पिता, पुत्र, पितामह आदि प्रधान पुरुष सदस्यों का उल्लेख मिलता है। पिता घर का स्वामी और परिवार

का प्रमुख सदस्य होता था। घर के स्वामी के रूप में इसे गृहपति कहा जाता था[45]। सन्तान को सब प्रकार से प्रसन्न रखना और परिवार के सभी सदस्यों को आपत्ति से संरक्षित करना भी गृहपति का कार्य था[46]। पारिवारिक सदस्यों में पिता को सर्वाधिक अधिकार प्राप्त थे। यदि कोई उसके अधिकार को नहीं मानता था तो वह उसे दण्ड़ित भी करता था। विश्वामित्र और ऐतश मुनि ने अपने पुत्रों को घर से निकाल दिया था[47]। गृहपति पुत्रों का दान व विक्रय भी कर सकता था। ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेप आख्यान से यह विदित होता है[48]। ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में उल्लिखित पुत्र, पुत्रक, तोक्य, प्रजा, वीर आदि शब्द पुत्र के द्योतक हैं[49]। मान्याता थी कि पिता अगर अपने जीवन काल में पुत्र का मुख देख ले तो वह पितृऋण से मुक्त हो जाता था और अमर हो जाता था। वह अतितारिणी और इरावती नाव के समान है, क्योंकि पुत्र पिता को आप्तत्तियों से करता था। जिसके पुत्र नहीं उसका यह लोक निष्फल माना जाता था[50]। इस लिए पिता पुत्र से अत्यधिक स्नेह रखता था और कामना करता था कि मेरा पुत्र मुझसे भी अधिक गुणवान बने[51]। पारिवारिक वंश परम्परा में पुत्र के पश्चात नप्तृ (दौहित्र) तथा पौत्र (पुत्र का पुत्र) का उल्लेख मिलता है[52]। ऐतरेय ब्राह्मण में वधू को श्वसुर के सामने लज्जावश पर्दे में छिपने की बात कही गई है[53]।

ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में गृहपत्नी, माता, पुत्री, वधू आदि स्त्री सदस्यों की चर्चा हुई है। गृहपति के समान गृहपत्नी भी यज्ञ की अधिकारी थी[54]। किसी भी कार्य को करने से पूर्व पुत्र माता की आज्ञा अवश्य लेते थे[55]। पारिवारिक संरचना में पत्नी पति की सहगामी होती थी। पति के साथ मिलकर वह सामाजिक और धार्मिक कार्यों का निर्वाह करती थी। पत्नी सुख दुःख में मित्र के समान परामर्श और साथ देती थी[56]। सन्तान प्रदान कर वह वंश परम्परा का वर्धन करती थी। पत्नी परिवार का पालन करती थी। सभी सदस्यों को भोजन कराने पश्चात ही वह भोजन करती थी[57]। परन्तु धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टि से पुत्री की स्थिति परिवार में महत्वपूर्ण नहीं थी। ऐतरेय ब्राह्मण में उसे 'कृपण' व 'दारिका' कहा गया है[58]। ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में कहीं पर भी पुत्री की प्राप्ति की कामना नहीं की गई है। अग्निहोत्र यज्ञ के क्रियमाण काल के विषय में विभिन्न मतों के साथ गन्धर्व–ग्रहीता के मत का भी उल्लेख है। सूर्या–सावित्री के स्वयंवर से यह विदित होता है[59]। ऐतरेय ब्राह्मण में भाई के साथ बहन का भी उल्लेख है। वधू गृहपत्नी के रूप में पति की बहनों पर शासन करती थी। हविप्रदान करने के प्रसंग में 'जामि' के उल्लेख है। आचार्य सायण ने जामि का अर्थ बहन (भगिनी) किया है। कौषीतकि ब्राह्मण में जामि शब्द रक्त के सम्बन्धित स्त्रियों के लिए हुआ है[60]। इन सम्बन्धों के अतिरिक्त मातामही, भ्रातृश्वसा आदि विभिन्न सम्बन्ध रहे होंगे परन्तु उनका उल्लेख ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में नहीं मिलता है।

निष्कर्षः ऋग्वेदीय ब्राह्मणों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में परिवार प्रेम, करुण, सौहार्द, मैत्री आदि गुणों से पल्लवित था। जो रूप एक परिवार का था वही रूप सम्पूर्ण समाज का था। प्रातः वन्दनीय ऋषियों ने तत्कालीन समाज का वसुधैव कुटुम्बकम्[61] की भावना से कल्याण किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 विश्वं भवत्येकनीडम्। शुक्ल यजु.32/8 ।
2 सर्वज्ञानमयो हि स। मनु. 2/7 ।
3 वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, कपिलदेव द्विवेदी, अ.3 पृ. 118 ।
4 वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, कपिलदेव द्विवेदी, अ.3 पृ.112 ।
5 य इमे ब्राह्मणाः प्रोक्ता मन्त्रा वै प्रोक्षणे गवाम्। महाभा.उ.प. अ. 17/9 पृ.50 ।
6 (क) ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुंसकम्। मेदनीकोष 67।
(ख) मन्त्रो मन्त्रयतेर्धातोब्राह्मणे ब्राह्मणोऽरमणानात्। वायु पु. 56/141, ब्रह्माण पु. अ.134 ।
(ग) वागिति ब्राह्मणमुच्यते। बौधायन धर्मसूत्र. 1/7/10 ।
(घ) सप्त च वै शतानि विंशतिश्च संवत्सरस्याहोरात्र इति च ब्राह्मणं विभागेन विभागेन। निरू.4/7
(ड.) ऐतरेयब्रा. 26/2, 29/2 ।
(च) छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि। अष्टा. 4/2/65 ।
(छ) मन्त्राः सब्राह्मणाः प्रोक्तास्तादर्थं ब्राह्मणं स्मृतम्।
कल्पना च तथा कल्पाः कल्पश्च ब्राह्मणस्तथा।। विष्णुधर्मो. 3/17/1 ।
7 (क) ब्राह्म वै मन्त्रः। शतपथ.ब्रा. 7/1/1/5 ।
(ख) ब्राह्म वै यज्ञः। शतपथ.ब्रा. 3/1/4/5 ।
(ग) ब्रह्मन् शब्द का एक अन्य अर्थ है– पवित्र ज्ञान या रहस्यत्मक विद्या। वैदिक साहित्य. एवं संस्कृति, कपिलदेव द्विवेदी, अ.3 पृ.112 ।
(घ) बृंह्+मनिन्। आध्यात्मविद्या। संस्कृत–हिन्दी–कोष, वी.एस. आप्टे, पृ.733 ।
8 ब्राह्मण ग्रन्थों के राजनीतिक सिद्धान्त, डॉ.बलवीर आचार्य, पृ.6 ।
9 ऋग्वेदभाष्य–उपोद्घात।
10 दर्शपौर्णमास प्रकाश। सूत्र–32।
11 ब्राह्मणं नाम कर्मणास्तन्मन्त्राणां व्याख्यानग्रन्थः। भट्टभाष्कर, तै. सं.भा. 1/5/1 ।
12 नैरुक्तयं यत्र मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्।
प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते ।। वाचस्पतिमिश्र ।
13 परिवार को समाज की आधारभूत इकाई इसलिए माना जाता है क्योंकि बच्चा परिवार में ही जन्म लेता है तथा परिवार ही उसे सर्वप्रथम सामाजिक प्राणी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
14 यथा वृक्षाणां समष्ट्याभिप्रायेण वनमित्येकत्वव्यपदेशो। श्रीमत्सदानन्दयोगीन्द्रप्रणीतो वेदान्तसारः। पृ.42 ।
15 संगठन के आधार पर परिवार के दो भेद हैं– एकाकी परिवार और संयुक्त परिवार।
(क) एकाकी परिवारः– वह परिवार जिसमें पति–पत्नी बिना बच्चों के या अविवाहित बच्चों के साथ रहते हैं।
(ख) संयुक्त परिवारः– जिस परिवार में एक से अधिक एकाकी परिवार सम्मिलित होते हैं उसे संयुक्त परिवार कहते हैं। समाजशास्त्र, डॉ.संजीव महाजन, अ.8 पृ.125,राजलक्ष्मी पब्लिकेशन्स, मेरठ ।
16 संस्कृत–हिन्दी–शब्दकोष, वी.एस.आप्टे, पृ.595 ।
17 वैदिक संहिताओं में आचार–मीमांसा, डॉ.प्रतिभा रानी, पृ.123 ।
18 ऐतरेय ब्राह्मण 10/85/42 ।
19 ऐतरेय ब्राह्मण 10/85/46 ।
20 ऐतरेय ब्राह्मण 34/7, 33/5 ।
21 पूर्व पुरूषादन् यत्तद गोत्रम्। शब्दकल्पद्रुम, द्वितीय खण्ड, पृ. 355 ।
22 अष्टाध्यायी, 4/1/3 ।
23 कौषीतकि ब्राह्मण 35/15 ।
24 (क) कौषीतकि ब्राह्मण 30/5, 26/4, 35/1, ऐतरेय ब्राह्मण 30/7, 16/6, 34/7।
(ख) ऐतरेय ब्राह्मण 28/6, 34/7 ।
25 गोत्र प्रवर, निबन्ध कंदव, पृ.269 ।
26 ताभिर्यथपृष्यसप्रीणीयाद्यऋझयाप्रीणाति.........। ऐतरेय ब्राह्मण 6/4 ।
27 ऐतरेय ब्राह्मण 2/29 ।
28 ऐतरेय ब्राह्मण 30/7, कौषीतकि ब्राह्मण 30/5 ।
29 ऐतरेय ब्राह्मण 3/2, 30/9, कौषीतकि 4/1, वैदिक इन्डैक्स,भाग2, पृ.127।
30 प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू का मत।
31 ऐतरेय ब्राह्मण 32/8–10।

32 अयज्ञीयो व एष योऽपत्नीक। तै.ब्राह्मण 2/2/2/6, 3/3/3/1।
33 ऐतरेय ब्राह्मण 32/9 ।
34 ऐतरेय ब्राह्मण 33/1 ।
35 कौषीतकि ब्राह्मण 2/7, 6/1, 14/2, 3/9 ।
36 धर्माऽविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभः। भगवद्गीता अ.10 ।
37 अपि बहव्य इव जायाः। ऐतरेय ब्राह्मण 15/3 ।
38 ऐतरेय ब्राह्मण 12/11, 12/12, 33/1 ।
39 श्रियावा एतद् रूपं यत्पत्न्यः। तै.ब्राह्मण 3/84 ।
40 अभिवृत्य सपत्नानभि। अथर्व. 1/29 ।
41 ऐतरेय ब्राह्मण 31/1, 32/8, कौषीतकि ब्राह्मण 10/1 ।
42 समाजशास्त्र, डॉ.संजीव महाजन ।
43 ऐतरेय ब्राह्मण 39/7,9 ।
44 ऐतरेय ब्राह्मण 26/2, 37/3 ।
45 कौषीतकि ब्राह्मण 2/2, 3/7, 5/6–7, 16/1–15, 10/6, ऐतरेय ब्राह्मण 3/5, 13/13 ।
46 ऐतरेय ब्राह्मण 13/10 ।
47 ऐतरेय ब्राह्मण 30/7, कौषीतकि ब्राह्मण 30/5 ।
48 ऐतरेय ब्राह्मण 33/1/6 ।
49 ऐतरेय ब्राह्मण 1/1, 1/3, 2/3, 3/2 ।
50 ऐतरेय ब्राह्मण 33/1 ।
51 प्रजामेव तच्छेपस्तिमात्मानः कुरूते। ऐतरेय ब्राह्मण 12/13 ।
52 पुत्रपौत्रनप्तृन्नित्याहूः। ऐतरेय ब्राह्मण 32/91 ।
53 ऐतरेय ब्राह्मण 12/12 ।
54 ऐतरेय ब्राह्मण 31/1 ।
55 अन्वेन माता मन्यतामनुपिता। ऐतरेय ब्राह्मण 6/6 ।
56 ऐतरेय ब्राह्मण 13/13 ।
57 अन्तभाजौ वै पत्न्यः। कौषीतकि ब्राह्मण 16/7 ।
58 ऐतरेय ब्राह्मण 33/1 ।
59 ऐतरेय ब्राह्मण 17/1, कौषीतकि ब्राह्मण 2/9 ।
60 ऐतरेय ब्राह्मण 12/11, 13/13, कौषीतकि ब्राह्मण 28/5–6, 30/11 ।
61 हितोपदेश। 1/69 ।